Presented to the Library Arya Smaj Lashkar. Govinda Saran Srinavara Arya Bag

श्रीमद्दयानन्द-निरूपण

[महर्षि नये रूप में]

189.25

284 93/1464

लेखक—

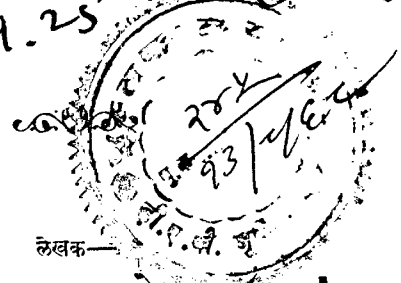

श्रीरत्नाम्बरदत्त चन्दोला, 'रत्न'

632 ८.१४.५

प्रथमावृत्ति] १८८१ वै० (मूल्य प्रेम)

गुरु विरजानन्द दण्डी
स्मृति पुस्तकालय
पु परिग्रहण क्रमांक 1486
दयानन्द महिमा मठ

प्रकाशकः—
श्रीहरिशरण श्रीवास्तव्य, 'मराल',
बी० ए० एल-एल० बी०, वकील,
अन्दरकोट, शहर मेरठ।

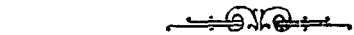

"मैं लोगों को क़ैद कराने नहीं, छुड़ाने आया हूं"
—म० दयानन्द

मुद्रक:—
बा० शिवकृपालु, अध्यक्ष,
विद्या प्रिंटिंग प्रेस, मेरठ।

"प्रेमो वै ईश्वरः"

प्रेमोपहार

श्रीमन् !–

ऋषि के चरित-'निरूपण' का यह—
पहला पुण्य-प्रयत्न,

भेंट प्रकम्पित-कर से करता—
प्रेम-प्रयाची प्रेमिक—

'रत्न'

श्रील श्रीयुक्त.....

.....समीपेषु ।

गुरु-वचन-सुधा

१

" जहां भोग वहां रोग, और जहां रोग
वहां वृद्धावस्था अवश्य होती है । "

२

" राज-नियम और जाति-नियम होना चाहिये कि पांच व आठवें वर्ष से आगे कोई अपने लड़के और लड़कियों को घर में न रख सके, पाठशाला में अवश्य भेज देवे । जो न भेजे वह दण्डनीय हो । "

३

"....और जो स्त्रियों के पढ़ने का निषेध करते हो वह तुम्हारी मूर्खता, स्वार्थता और निर्बुद्धिता का प्रभाव है...."

४

" जो पुरुष विद्वान् और स्त्री अविदुषी और स्त्री विदुषी और पुरुष अविद्वान् हो तो नित्य-प्रति देवासुर संग्राम घर में मचा रहे । फिर सुख कहां ?

५

" मनुष्य उसी को कहना कि मनन-शील होकर स्वात्म-वत् अन्यों के सुख दुःख और हानि-लाभ को समझे । अन्यायकारी बलवान् से भी न डरे और धर्म्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे ।"

" सत्यार्थ-प्रकाश "

दो शब्द

प्रस्तुत 'निरूपण' मैंने कृत-विद्य श्री पण्डित नरदेव जी शास्त्री, वेदतीर्थ के आज्ञानुसार 'शंकर' के शताब्दी-अंक के लिए लिखा था। किन्तु, आशु-लेखक न होने के कारण, मैं यथा-समय लेख भेजने में पिछड़ गया। मेरे लिए 'शंकर' में जो स्थान प्रयोजित था, उस से यह 'निरूपण' कहीं अधिक विस्तीर्ण निकला। अतः श्री शास्त्रीजी के 'उपोद्घात' सहित यह छोटीसी पुस्तिका के रूप में आज आपके कर-कमलों में है।

बच्चों के खेल सरल होते हैं, सो उनकी ज़रा ज़रा-सी बात पर बड़े लोग मुस्करा दिया करते हैं। 'निरूपण' भी कोई पुस्तिका नहीं, वस्तुतः एक 'गुड़िया' है! क्या ऐसी आशा करूं कि यह आप का दो क्षण के लिए मनोरंजन कर सकेगी?

श्रीशास्त्रीजी को 'उपोद्घात' लिखकर मेरे इस खेल में योग देने के लिए मैं एक बार हृदय से धन्यवाद दिये बिना न रहूंगा।

श्रीयुत 'मराल' जी मेरे मानस-मित्र हैं अतः उन्हें प्रकाशन भार ग्रहण करने के लिए धन्यवाद देने की मैं विशेष आवश्यकता नहीं समझता, उनके लिए मौन-कृतज्ञता ही पर्य्याप्त होगी।

मेरठ, सं० प्रां०
२-२-१९३५

— रत्नाम्बर।

ॐ तत्सत्

* उपोद्घात *

प्रियवर श्री पण्डित रत्नाम्बरदत्त चन्दौला जी एक होनहार कवि हैं। पञ्चदश हिन्दी साहित्य सम्मेलन [देहरादून] के अवसर पर कवि-सम्मेलन में आपकी प्रारम्भिक प्रतिभा का परिचय मिला था। किन्तु मैं आपको लेखक नहीं समझता था। इस 'निरूपण' को पढ़ने के पश्चात् मेरा विचार हो गया कि आपके इस लेख में भावी उद्भट लेखक का बीज विद्यमान है। यह 'निरूपण' आपने बड़ी स्वतन्त्रता से लिखा है, 'थिऑसॉफिस्ट' की दृष्टि से लिखा है, अतः प्रत्येक आर्य भाई के मनन करने योग्य है। आपकी लेखनशैली देखने का मुझको यह प्रथम ही अवसर है। मैं आपको इस स्तुत्य प्रयत्न के लिये बधाई देता हूं - और यही मंगल-कामना करता हूं कि " धर्मे ते धीयतां बुद्धिर्मनस्ते महदस्तु च " —

श्रीनरदेव शास्त्री, वेदतीर्थ।

माघ सुदी १० संम्वत १९८१,
महाविद्यालय-ज्वालापुर, (हरिद्वार)।

श्रीमद्दयानन्द-निरूपण

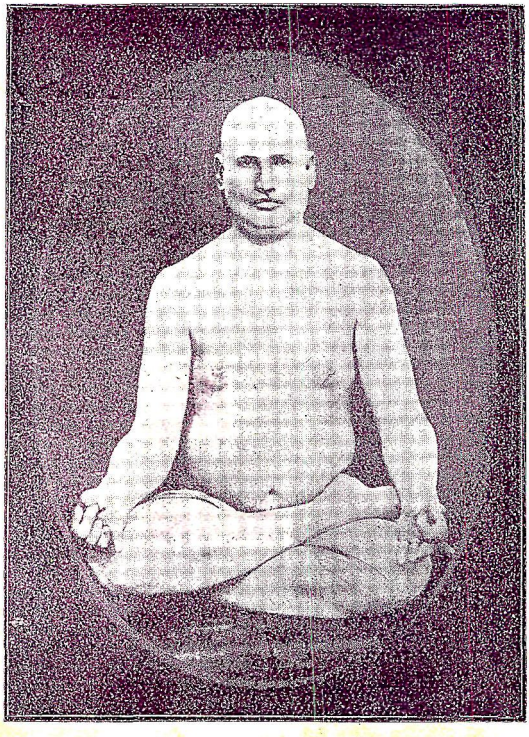

जगद्गुरु स्वामी दयानन्द सरस्वती

गुरु-गरिमा

जय जय-ऋषि-कुल-दिनेश,
सौम्य-वदन, चारु,-वेश,
पुण्य-राशि, बुध-वरेश,
बाल ब्रह्म-चारी ।

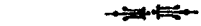

सित-विचार, मन उदार,
आर्य्य-जन-समाज-हार,
शान्ति-मय दयावतार,
विश्व-मठ-पुजारी

धर्म्म-कर्म-मर्म्म-वान,
वेद-भेद-ज्ञान-खान,
योग-निरत, निरभिमान,
यति, परोपकारी ।

(८)

सकल साधना समेत,
भव्य-भावना-निकेत,
जग-प्रपञ्च से सचेत,
अतुल शक्ति-धारी ॥

—'रत्न'

"श्रीमद्दयानन्द-निरूपण"

(महर्षि नये रूप में)

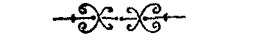

यों तो विश्व-मञ्च पर अपना अपना अभिनय अभिनीत करने नित्य नूतन खिलाड़ी आते हैं, और दर्शकों की वाह-वाही लूटकर चले जाते हैं। किन्तु महर्षि दयानन्द के जोड़ का खिलाड़ी कोई विरला ही होता है! ऐसा खिलाड़ी रंग-भूमि पर नाम कमाने की कामना से नहीं, प्रत्युत मानव-धर्म्म-परायणता की ध्रुव-धारणा से प्रेरित होकर आता है। और एक मात्र यही कारण है कि वह दर्शकों के मानस-पटल पर अपने सुकृत्यों की विविध-वर्ण-मयी कूचियों द्वारा एक चिर-स्थायी चारु-चित्र अंकित कर जाता है।

दयानन्द सरस्वती सचमुच ही 'दया' 'आनंन्द' और 'सरस्वती' के साक्षात् अवतार थे। 'यथा नाम तथा गुण' की सार्थकता के वे मूर्तिमान उदाहरण थे।

उनका विशाल-मन उदात्त-विचारों का केन्द्र था। उनका हृदय, सागर की भाँति गम्भीर, गगन की भाँति विस्तीर्ण, एवम् पृथ्वी की भाँति क्षमा-शील था। उनका रूप अनूप था; उनका वेश सविशेष था; उनका धर्म्म सत्कर्म्म था। जितना समुज्ज्वल उनका शैशव था उतना ही समग्र-जीवन रहा।

दयानन्द आर्य्य-जाति के आदर्श, समाज के प्राण और देश के गौरव थे। इतना ही नहीं, वे विश्व-मन्दिर के कर्मठ पुजारी थे। होने को तो वे भी मूर्ति-पूजक थे, पर उनकी उपास्य-मूर्ति निर्जीव नहीं सजीव थी—जड़ नहीं चैतन्य थी। और यदि सच पूछो तो वास्तविक मूर्ति-पूजा का अभिनव-आविष्कार दयानन्द ने ही किया। उन्होंने संसार को उपदेश दिया कि व्यक्ति-गत उपासना को तिलाञ्जलि देकर सम्पूर्ण-समाज की पूजा करो—क्योंकि समाज ही जीती-जागती, चलती-फिरती, और हँसती-बोलती मूर्तियों का एक मात्र सुविशाल-विहार है-उसकी सेवा ही परम धर्म्म है, उसकी पूजा ही मुक्ति-द्वार है!!

दयानन्द की पूजा का ढंग भी निराला था। वे समाज-मन्दिर में वेद के मन्त्र गम्भीर-स्वर से उचारा करते थे। उनके कल-कण्ठ-कूजन से सारा यज्ञ-मण्डप कूजित हो उठता था। प्रायः गाते २ वे इतने तल्लीन हो जाते थे कि मनचले लोग उन्हें 'पगला-जोगी' की उपाधि दिये बिना न रहते! जिज्ञासु पूछते कि गायत्री-मन्त्र आप ज़ोर से क्यों कहते हैं, यह तो मन ही मन जपना चाहिये, अन्यथा शास्त्रानुकूल बड़ा पाप होता है। तो आप अपनी स्वाभाविक हँसी हँस कर उत्तर देते कि तब तो शास्त्रों में यह भी लिखा होगा कि ज़ोर से हँसना भी पाप है और रोना भी पाप, गाना भी पाप है और कुछ कहना भी पाप!— कैसा बालकों का-सा सरल, किन्तु योगिराज-कृष्ण का सा गम्भीर और तर्क-युक्त उत्तर है! भला कौन ऐसा अर्जुन होगा जो इस वाक्य से सन्तुष्ट न हो!

दयानन्द यथार्थ सनातन-धर्म्मी थे। क्योंकि एकेश्वर-वाद उन में कूट-कूट-कर भरा था। सनातन-

काल में यहां के लोगों में एकेश्वर-वाद पूर्ण-रूप से विद्यमान था । हां, कालान्तर में त्रिमूर्ति-सम्बन्धी विचारों ने अवश्य कुछ भ्रान्ति फैला दी । ब्रह्मा, विष्णु और महेश को लोग परब्रह्म ज्योतिः स्वरूप-ईश्वर से पृथक् समझने लगे । किन्तु, स्वामी जी का विश्वास कहता था कि वही सर्व शक्तिमान-निराकार-ईश्वर 'स्रष्टा' होने के कारण ब्रह्मा, 'रक्षक' होने के कारण विष्णु और 'संहारक' होने के कारण महेश है । वही परमेश्वर इन तीनों महती-शक्तियों का एक मात्र सञ्चालक है; ये शक्तियां और कुछ नहीं, केवल उसी के तीन भिन्न-भिन्न अभिधान हैं । दयानन्द के सनातन-धर्म्म-निष्ठ होने का एक और, साधारण किन्तु पुष्ट, प्रमाण यह है कि उन्हें वेदों में पूर्ण विश्वास था । वेद सनातन या आदिकाल की सब से पहली उपज माने जाते हैं, सो जो वेद-निरत है वह निस्सन्देह 'सनातन'-धर्म्मी है ।

दयानन्द भगवान राम और कृष्ण को अपने मुख से 'अवतार' नहीं कहते थे । वे उन्हें एक परम

योगी, महापुरुष या महात्मा के नाम से सम्बोधित करते थे। क्यों? इसका कारण बड़ा ज़बर्दस्त है। वे स्वयं एक विशेष-आत्मा के रूप में अवतरित हुए थे, उन में स्वयं भगवान का प्रतिबिम्ब था। सो यह जानते हुए कि हिन्दू-लोगों की चित्त-प्रवृत्ति भगवान व देवताओं की जन-संख्या परिवर्द्धित करने की ओर बहुत है, उन्होंने भगवान को वही मनुष्य का सा रूप मानकर, मनुष्य ही समझकर और मनुष्योचित-आदर्श बतला कर उन्हें नर-पशु से नर-देव बननेकी चेतावनी दी।

दयानन्द 'भागवत' के कृष्ण को 'महाभारत' के कृष्ण से भिन्न मानते थे। क्योंकि श्रीमद्भागवत में कृष्ण को एक पूर्ण-पतित-व्यभिचारी का रूप दिया गया है, जबकि 'गीता' में एक परम आदर्श-चरित, धर्म्म-नीतिज्ञ का। पहले कृष्ण की नियुक्ति केवल कवि की कल्पना के परों पर ही उड़ने के लिए की गई है, वह कविता-गोपी के मनोरञ्जन का सामान है। यदि कवि काले-कन्हैया को काम की कामरी

उड़ा कर बेचारी नग्न-अबलाओं के वस्त्र चुरवा कर, विलास-क्रीड़ाएँ करवा कर, इतना रंगीला न प्रमाणित करता, तो कदाचित आज श्रीमद्भागवत का इतना बे-भाव प्रचार न होता! दूसरा कृष्ण कोकिल के रूप में गीता की सुरम्य-वाटिका में संसार की कल्याण-कामना के गीत गाता है; वह धर्म्म-संस्थापना में दिन रात एक कर देता है; वह विश्व को निष्काम-कर्म्म का पीयूष-पूर्ण-उपदेश देता है। दोनों कृष्णों में आकाश-पाताल का सा अन्तर है! श्रीमद्भागवत जैसे पुराण को, जोकि सारतः एक उच्च कोटि का काव्य कहा जाता है, दयानन्द केवल इसी लिए कपोल-कल्पित समझते थे कि उस में एक महान से महान आत्मा को भी भारत के सुनिर्म्मल-अन्तरिक्ष का कलंकित चन्द्रमा प्रमाणित किया गया है। स्वामी जी के 'सत्यार्थ प्रकाश' की आधार-शिला वस्तुतः ये पुराण ही प्रतीत होते हैं।

दयानन्द एक समाज-सुधारक होने पर भी मदिरा-सेवन करते थे—यह उन की उन नशीली

आँखों से झलकता था जिन से सदैव आग-सी बरसा करती थी। पर जैसे शराबी वे थे वैसा मनुष्यों में होना दुर्लभ ही नहीं, असम्भव है। वे "प्रेमो वै ईश्वरः" का प्याला हरदम पिये रहते थे। उसी के नशे में जहां दो आदमियों के बीच खड़े हुए तहां लम्बी २ प्रेम की कहानियों का तारतम्य बांध देते थे। समय-असमय का ध्यान न रखते थे। इसी कारण उस निरपराध शराबी से बहुत-से पाखण्डी जले-भुने रहते थे। पर शराबी कब लोक-अपवाद की परवाह करता है!

दयानन्द कहते थे कि आदमी हमेशा गिरने पर सँभलता है, राह से बे-राह होने पर ही असली राह को ढूंढता है। सो बिगड़े हुए को बिगड़ा समझकर छोड़ देना उचित नहीं। क्यों कि:—

"आदमी पहले मुहब्बत में बिगड़ ले तो बने,
खाक में मिल जाय दाना तो शगूफ़ा निकले!"

दयानन्द का दृष्टि-कोण इतना अपरिमित था कि वे तुच्छातितुच्छ वेश्याओं को भी प्रेम की दृष्टि से

देखते थे। वे उनको समाज-पतिता समझ घृणा-पूर्वक उनकी ओर से, और ना-समझों की तरह, आंख नहीं फेरते थे। क्योंकि यह उन से छिपा नहीं था कि वे वेश्या के रूप में न तो आस्मान से गिरीं और न पृथ्वी से ही उपजीं। वे हमारी ही ठुकराई हुई बहिने हैं, बहुएँ हैं, बेटियां हैं। वे यह भी जानते थे कि वह बेचारी अबलाएं निर्दोष हैं, केवल अपने दुर्व्यसनी और अश्लीलता के पुजारी पतियों के अखण्ड पापों का घोर प्रायश्चित करने के लिए वे इस नर-लोक में ही अपमान और लज्जा सहकर, दो टुकड़ों के पीछे, वेश्या के रूप में पातिव्रत्य निभारही हैं !!! उन्हें बहिन कह कर गले लगाना घृणास्पद नहीं, बल्कि उनसे अकारण असहयोग करना मानव-समाज की एक भयंकर भूल है।

दयानन्द विधवा-विवाह के कट्टर विरोधी थे, पर केवल उसी सीमा तक जहां तक कि विधवा में पवित्र वैधव्य-धर्म का पालन करने की पूरी क्षमता हो। हां, ये बात वे अवश्य कहते थे कि यदि उस

अबला का हृदय ज़रा भी धर्म-पथ से विचलित हो तो उसे कोई अधिकार नहीं कि वह अपने स्वर्गीय पति का गुप्त-रीति से अपमान करे—उसे स्वर्गीय पति को तत्काल त्याग दूसरे का खुल्लमखुल्ला वैदिक रीति से पाणि ग्रहण कर लेना चाहिए ।

दयानन्द को पितृ-श्राद्ध-संस्कार में बड़ी श्रद्धा थी । सन्यासी होकर भी वे आजीवन अपने पूर्वजों का सभक्ति श्राद्ध करते रहे । किन्तु उनके श्राद्ध संस्कार की विधि विचित्र थी । उन्हों ने केवल ब्राह्मणों को ही नहीं जिमाया, बल्कि अछूतों को भी ब्रह्म-भोज का अधिकारी बनाया—क्योंकि उन्हें विश्वास था कि जग-बंधन से मुक्त होकर; उस भेद-रहित स्वर्ग में जाकर, क्या ब्राह्मण क्या शूद्र, सब के पूर्वज एकात्मता के भाव-पाश में बँध जाते हैं । सो उनकी आत्मा को शांति तभी होसकती है, जब उनकी सन्तान भेद-भाव भूलकर उन को एक साथ तर्पण दे । वे यह भी अवश्य कह गये हैं कि जो संकीर्ण-विचार रखता हो, जिस के

हृदय में उक्त भाव न हों, उसे पितृ-श्राद्ध-संस्कार करने का कदापि अधिकार नहीं । बिना एकात्म-भाव के श्राद्ध-संस्कार और कुछ नहीं, केवल पाखण्ड है, या यों कहिए, स्वर्ग-प्राप्त पुण्यात्माओं की आंखों में धूल झोंकना है !

दयानन्द पर-मतावलम्बियों के परम-हितैषी थे । वे स्वधर्म्मियों के साथ २ विधर्म्मियों को सुधारना अपना पुनीत-कर्तव्य समझते थे । वे सर्वदा ऐसा प्रयत्न करते थे कि जिस से विधर्म्मियों को "विधर्म्मी" कहलाने का मौका न मिले । वे उन्हें भी "स्वधर्म्मी" बनाना चाहते थे । वे कहते थे कि एक धर्म्म वालों का दूसरे धर्म्म वालों से तबतक ऐक्य नहीं हो सकता जबतक कृत्रिमता-पूर्ण मत-मतान्तर की तलवार दोनों के बीच से न निकाल ली जाय । वे शान्ति-प्रिय थे, सारे जग में शान्ति की संस्थापना करने के हित वह जो उपदेश दे गये हैं, वह आज भी संसार को उनके विमल-यश से गुँजा रहा है ।

दयानन्द सत्साहित्य-सेवी थे। उनकी अन्वेषणा थी कि बिना गृह-लक्ष्मियों के पास जाए किसी भी देशका साहित्य जीवितावस्था में नहीं रह सकता। साहित्य एक दूध-मुँहे बच्चे की भांति है, बिना माता के उस की कुशलता कहां? स्त्रियां जिस प्यार से उसे पालेंगी, वह पुरुषों की तो कल्पना से भी परे है!

दयानन्द सिद्ध-हस्त-लेखक थे—उनकी लेखनी साम्प्रत-संसार के लिए धर्म्मोपदेश छोड़ गई है।

दयानन्द विश्व-वन्द्य-कवि थे। उनका कल्पना-पक्षी भविष्य के प्रच्छन्न-आकाश में इतनी दूर उड़ा कि आज की आवश्यकताएँ उन्हें ९० वर्ष पूर्व अनुभूत हो चुकी थीं।

दयानन्द विज्ञानी थे। मानव-समाज के प्रत्येक अंग का उन्होंने विज्ञान के दूरवीक्षण-यन्त्र द्वारा निरीक्षण किया था। उनकी सुधार-प्रणाली वैज्ञानिक सिद्धान्त और साधनों पर अवलम्बित थी।

दयानन्द जहां एक अति असाधारण सन्यासी थे वहां एक अभूतपूर्व गृहस्थ भी। वे विवाहित थे—उन्होंने 'विरति'-(वैराग्य) से सम्बन्ध जोड़ा था—उसके स्वयम्बर-यज्ञ में वर-माला पाई थी! विरति के द्वारा उन्हें जो पुत्र प्राप्त हुआ वह आज तक, ईश्वर की कृपा से, सकुशल है। उस का नाम है:—

"आर्य्य-समाज"!

दयानन्द संसार की दृष्टि में मानव-जीवन-सर्वस्व थे, किन्तु अपनी दृष्टि में वे एक साधारणातिसाधारण नर-तन-धारी जीव थे। अर्थात् वे सबकुछ थे और कुछ भी नहीं! उन्होंने तपस्वी के रूप में जन्म लिया और तपस्वी ही के रूप में यह नश्वर-शरीर छोड़ा। अर्थात वे जन्म-सिद्ध-तपस्वी थे, किसी के बनाये हुए नहीं। इसी से तो कहते हैं कि वे कोई ऐसे-वैसे मनुष्य नहीं, किन्तु एक परम श्रद्धास्पद महर्षि थे। थे ही नहीं बल्कि हैं, और तब तक रहेंगे जब तक जगतीतल पर आर्य-जाति का अस्तित्व है। कारण, महात्माओं की मृत्यु नहीं होती, वे अपने तपस्या-बल से अमरत्व को प्राप्त हो

जाते हैं। अस्तु, यह निर्विवाद सत्य है कि महात्मा दयानन्द, न होते हुए भी, हैं !

दयानन्द अलक्ष्य रूप से अब भी भारत में विद्यमान हैं। उनके दर्शन करने हों तो समाज-पीड़िता बाल-विधवाओं के हृदय-मन्दिर में जाइए, दीन-हीन अछूतों के आत्मा को टटोलिए, और पद-दलित समाज की कराहती हुई गउओं के समूह में ढूँढिए ! वहीं वे अबला-हितकारी, अछूत-बन्धु और गो-रक्षक मर्य्यादा-पुरुषोत्तम अपने कर्तव्य-कर्म्म में संलग्न दिखलाई देंगे। उनके पाने में विलम्ब नहीं, विलम्ब हो सकता है उनको देख सकने वाली आँखों के पाने में !

* ओ३म् शम् *

गुरु विरजानन्द दण्डा
सन्दर्भ पुस्तकालय
प्र परिग्रहण क्रमांक ... 1486
दयानन्द महिला महावि

* शुभ-कामना *

[शिखरिणी]

सदा ही से हैं जो सुहृदवर सौम्यानन अहा!
स्वदेशी-भावों से विमल जिनका है मन भरा-
सदाचारी-सच्चे, शुचि-चरित-वाले, मनुज जो,
प्रभो! पावें सारे सुख सतत ही वे जगत में॥

भरा भ्रातृ-स्नेही-रुधिर जिनके है बदन में,
नहीं थोड़ा-सा भी कपट जिनके है हृदय में-
स-दिव्याभा हैं जो अगणित-गुणों की निधि महा,
सदा जीवें वो शुभ-सुमति-वाले जगत में॥

सुधी धर्मात्मा हो, हृदय-तल से जो भरवर,
हरेंगे सारे ही दुख जननि-भू के भरसक-
स्व-भाषा-सेवा जो सहृदय करेंगे सुरुचिरा,
सदा ही पावें वो यश सुकृति-द्वारा जगत में॥

—"रत्न"